दूसरा अध्याय

संजीव : परिवार, परिवेश, प्रकृति एवं रचना-संसार

किसी भी साहित्यकार का परिचय उनकी रचनाओं में सन्निहित रहती है और साहित्यकार की रचनाएँ उनके वैयक्तिक जीवन और व्यापक अनुभव क्षेत्र से पृथक करके नहीं देखी जा सकती हैं। सर्जक का जीवन-दर्शन ही उसकी रचनाओं की प्रेरणा भूमि होती है। किसी भी सर्जक के मानस पर तत्कालीन परिस्थितियों, प्रकृति, यथार्थ एवं राजनीतिक हलचल इत्यादि का गहरा प्रभाव पड़ता है जो उनकी रचनाओं में परिलक्षित होती है। कथाकार के यश का आधार ही उनकी रचनाएं और उसमें छिपे हुए जीवन मूल्य हैं। रचना का समीक्षक भी रचना का मूल्यांकन करते समय रचनाकार के जीवन-दर्शन के बारे में जानना चाहता है।

कथाकार संजीव का जीवन समकालीन हिंदी कथाकारों एवं पाठकों के बीच एक जिज्ञासु तथा व्यवस्था परिवर्तन के लिए बेचैन आत्मा के रूप में परिलक्षित है। उनके इसी 'जिज्ञासु वृति' ने उन्हें यथार्थवादी बनाया और वे प्रत्येक चीज को गहराई से शोध के स्तर तक जाँचने लगे –"मेरी दिक्कत यही है कि मैं चीजों को संपूर्णता में परखना चाहता हूँ, कोई भी सपाट या सरलीकृत' प्रतिचयन मेरा काम्य या अभिप्रेत नहीं, कोई चीज अच्छी है या बुरी तक ही नहीं, अच्छी या बुरी है तो क्या, कितना, कब क्यों तक फैलती है - मेरी जिज्ञासा।"[1]

वे अपने लोक, समाज, संस्कृति एवं देश से बहुत प्रेम करते हैं। वे व्यवस्था में बदलाव लाना चाहते थे जिसके लिए बचपन से ही वे अपने मित्र सूरज के साथ मिलकर प्रधानमंत्री के नाम खत लिखा करते थे –"प्रधानमंत्री जी, देश की हालत बड़ी खराब होती जा रही है। सूरज का तो जल्द ही धर्म, सत्ता और व्यवस्था से मोहभंग हो गया। मैं काफी भटककर उसके द्वारा अपनाई गई मार्क्सवादी राह पर आया।"[2]

---

1. *काशिद गिरिश (संपा.) 'कथाकार संजीव', संजीव, 'मैं और मेरा समय', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 14-15*

2. *संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – भूमिका से VIII*

आजादी के तीस साल बाद भी जब आम जनता की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया, अमीर और अमीर बनता गया, गरीब और गरीब, तो उनकी छटपटाहट वृहत से वृहत्तर होती गई। यह वृहतर आयाम ही उनके कथा-साहित्य में रूपांतरित हुई।

कथाकार संजीव का जीवन कैसा रहा? वे कौन से परिवेश और परिस्थितियाँ थीं जो उन्हें साहित्य सर्जन के लिए प्रेरित करती हैं। अपने परिवेश के संबंध में वे लिखते हैं–"मुझे तो जहाँ मैं खड़ा हूँ और जहाँ मेरे लोग खड़े हैं, उनके इर्द-गिर्द पसरे नरक से पहले जूझना है, उससे मैं आँखें कैसे मूँद लूँ।"[3]

संजीव का जन्म उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले के बांगरकला ग्राम में सन् 1947 में एक गरीब परिवार में हुआ था। परिवार में अर्थाभाव इस कदर व्याप्त था कि इस छोटे सदस्य के आगमन पर न तो कोई पारिवारिक उत्साह था और न ही जन्म तिथि याद रखना कोई आवश्यक बात। अपनी जन्म तिथि के संबंध में संजीव स्वयं कहते हैं –"जनम की तिथि मेरे जैसे परिवार के लिए कोई महत्व की बात नहीं थी। अत: पाँचवीं कक्षा में नाम लिखने के लिए हेडमास्टर साहब को ही आविष्कृत करनी पड़ी 7 जुलाई 1947।"[4]

नन्हें बालक का नाम राम संजीवन प्रसाद रखा गया। जिसे आगे चलकर कथाकार कमलेश्वर ने संक्षिप्त रूप में संजीव कर दिया। इनका बचपन अत्यंत गरीबी में नाक चुआता, धूल-गंदगी में डोलता बीता। तीन-चार साल तक की अवस्था में वे प्रकृति और पशु-पक्षियों के पीछे भागते रहते थे। अपने बचपन के बारे में वे स्वयं लिखते हैं –"मैं उन दिनों नंग-धड़ंग, सियारों, नीलगायों, लोमड़ियों, गिलहरियों को जिज्ञासु नजरों से जाँचता-परखता, भैंस की पीठ पर चरागाहों की सैर किया करता। केले की छाल की पनही, पलाश के पत्तों का टोप और कुई

---

3. संवेद 10, पृष्ठ संख्या – 149

4. संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – भूमिका से VII

की कंठी, सोते का पानी।"[5]

परिवार : भूख, अभाव और दरिद्रता से पीड़ित संजीव के परिवार में सदस्यों की संख्या बीस-पच्चीस थी और आश्रय के नाम पर डेढ़ बीघा उपजाऊ और चार बीघा ऊसर जमीन। इसके अतिरिक्त दुर्गापूजा के समय देवी-देवताओं की मूर्तियाँ गढ़ना भी इनका पुश्तैनी पेशा था। पर इतने कम आर्थिक आय से इस वृहत परिवार को चलाना संभव नहीं था। इसलिए परिवार के सदस्य हाड़तोड़ मजदूरी भी करते थे। जातिगत संड़ाध से बस्साता, सामंती शोषण से उफनता एवं आर्थिक विषमता से लबलबाता ग्रामीण समाज को दारिद्रय से भरा इनका परिवार अधिक दिनों तक सहन नहीं कर पाया और जीविका की तलाश में परिवार के कुछ सदस्य गाँव छोडने के लिए बाध्य हुए। लेखक के जन्म से पहले ही उनके पिता और काका रोजी-रोटी की तलाश में भटकते-भटकते पैदल बिहार और बंगाल के सीमान्त क्षेत्र ग्रामनुमा शहर कुल्टी में आकर बस गए। यह मुख्यतः कोयलांचल का क्षेत्र था। तत्कालीन ग्रामीण परिवेश में जातिगत विभेद, सामंती शोषण और आर्थिक विषमता अपने चरम पर थी, जिसके कारण अधिकतर खेतीहर मजदूर गाँव से पलायन करके बंगाल के कोयलांचल या जूट मील के क्षेत्र में मजदूरी की तलाश में आकर बस गए। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों के गाँवों से आजतक न तो पलायन रुका और न ही जातिगत विद्वेष का दंश। अपने परिवार के ग्राम छोड़ने की पीड़ा को उन्होंने 'पिशाच' नामक कहानी में व्यक्त किया है। उन्होंने लिखा है कि उनके काका महातम बाबा के हलवाहा थे। दिनभर हाड़तोड़ मेहनत करने के बाद रात को आम के बाग की रखवाली करनी पड़ती थी और काका के सोने की फ़ितरत से सभी वाकिफ थे और एक रात महातम बाबा बगीचे का निरीक्षण करने निकले –"उधर काका तीन-चार थप्पड़ खाने के बाद कच्ची नींद में उजबक की तरह हड़बड़ाकर उठ बैठे। अँधेरे में आँख मिचमिचाकर देखा तो उनकी दुखती आँख के सामने महातम बाबा का ज़िंदा ब्रह्म पिशाच था, 'सारे, इहै रखवारी कर रहे हो? इधर तुम सोई रहे हो तान के, उधर तुम्हारे बहनोई आम बीन

---

5. *संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – भूमिका से VII*

लेई गए।' काका ने रोते हुए पहली बार महातम बाबा को गलियाया, 'जा ससुर, तेरे जीते जी अब गाँव में कदम नहीं रखेंगे।' सुबह होते ही वे गाँव का सीवान पार कर जो गए कि आज तक नहीं लौटे।"[6]

अपनी पारिवारिक आर्थिक विपन्नता और ग्रामीण सामंती शोषण को भी उन्होंने इसी **'पिशाच'** नामक कहानी में रेखांकित किया है –"एक तरह से उनके बँधुआ मजदूर थे हम। मेरे बाबा और दादी महातम बाबा के खेत के कौए-सुग्गे हड़ाते, दादा और काका हलवाही करते, माँ और काकी अंदर से लेकर बाहर तक के सारे काम। शाम को मिलने वाली मजूरी, जो प्रायः किनकी, कोदों या घुन लगे जौ-मक्का की होती, को पीस-पीसकर रोटी बनती। ...अइया (दादी) लावा भुनतीं मकई के, महातम बाबा के लिए। ...हमें ठुर्री तक छूने की इजाजत नहीं थी, उसे अलग से पहुँचाना पड़ता। पूरा हिसाब लेते बाबा।"[7]

चार वर्ष की अवस्था में ही संजीव अपने काका के पास कुल्टी चले गए। यहीं पर पीपल के पेड़ के नीचे रामेश्वर गुरु जी के पाठशाला में इन्होंने अक्षर ज्ञान की शुरुआत की। वो तो काकी और भैया का डर था कि इन्होंने पढ़ाई शुरू की। भैया ने भी काफी उम्र गाँव के चरवाहे में गुजारने के बाद अपनी पढ़ाई शुरू की थी और वे संजीव से कई कक्षा आगे थें। संजीव तो पीछे-पीछे उनका अनुसरण कर रहे थे। पर भैया का डर ऐसा कि –"पहली बार इम्तहान-नुमा चीज़ की हल की गई पुस्तिका जमा करने की बजाय भैया की जवाबदेही से बचने के लिए मास्टरों से छिपकर सरपट भागता हुआ उनके (भैया के) हवाले कर बैठा तो उनहोंने सर पीट लिया!"[8]

---

6. *संजीव, 'पिशाच', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 315*

7. *वही, 314*

8. *संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – भूमिका से VII*

पाँचवीं कक्षा में केंदुआ उच्च विद्यालय कुल्टी में उनका नाम लिखा दिया गया। यहीं पर हेडमास्टर ने उनकी जन्मतिथि 7 जुलाई 1947 निश्चित की। पढ़ाई की शुरुआती दिनों में संजीव अति भुलक्कड़ थे, अपने कॉपी, किताब, स्लेट अक्सर कहीं न कहीं भूल जाया करते थे। इसलिए उनके स्लेट और किताब को एक साथ नथी करके उनके गले में लटका दिया जाता था। परंतु पढ़ाई में वे तेज थे जिसके कारण आगे चलकर उनकी फिस माफ हो गई और आगे की पढ़ाई करने में सुविधा हुई। राम संजीवन प्रसाद ने इसी केंदुआ उच्च विद्यालय कुल्टी से 1960 में द्वितीय श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा पास की। आगे चलकर बी.बी. कॉलेज आसनसोल में विज्ञान शाखा से स्नातक में दाखिला लिए। उनकी रुचि साहित्य में होते हुए भी उन्हें विज्ञान शाखा में दाखिला लेना पड़ा। संजीव लिखते हैं –"भैया बनाना चाहते थे डॉक्टर, इंजीनियर। पैसे की औकात रत्ती-भर की नहीं थी और फिर मुझे मेंढ़क, मछलियों को देखकर घिन आती, काटना तो दूर, छूना भी गवारा नहीं। इंजीनियरिंग में टेस्ट की जगह अपनी दूसरी परीक्षाएँ ध्यान खींच ले जातीं। मार्क्स के आधार पर दो-एक जगह संभावना जगी तो आयु आड़े आ गई। खैर सत्रह साल की वय में बी.एस.सी. डिस्टिंकशन से पासकर भैया ने मुझे दिल्ली भेजा ए.एम.आई. ई. पढ़ने को। ... अघखाए परिवार के पेट पर एक इंजीनियर खड़ा करने की कोशिश।"[9] खैर, 1964 में डिस्टिंकश्न मार्क्स के साथ उन्होंने बी.एस.सी. पास किया और 1965 में इंडियन आयरन एण्ड स्टील कंपनी कुल्टी में केमिस्ट के पद पर कार्यरत हो गए।

राम संजीवन प्रसाद का बाल-विवाह हुआ था। थोड़े और सयाने हुए तो गवना हो गया। पत्नी स्वस्थ कद-काठी की अल्प शिक्षित ग्रामीण संस्कारों से परिपूर्ण महिला थीं, जिनका संजीव के रचनाशिल्प से कोई लेना-देना नहीं था। अपितु वे संजीव की रचनाधर्मिता को एक तरह से प्रेत-बाधा मानती थीं और उसे दूर करने के लिए न जाने कितनी बार ओझा-सोखा को बुलाकर नींबू कटवातीं, नारियल फोड़वाती, धूप, लोहवान अगियार का धुँआ बंद कमरे में

---

9. संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – भूमिका से VIII

संजीव को सुंघाती –"एकबार दोपहरी में यह सोया हुआ था। मुँह में दो चुटकी राख पड़ी तो हड़बड़ाकर उठ बैठा। आँखें झपकाकर क्या देखता है कि भूत-प्रेत भगानेवाले एक ओझा जी मंत्र बुदबुदाते हुए इसकी झाड़-फूँक कर रहे हैं। यह ठहरा पक्का नास्तिक, एकदम अधर्मी। ओझा जी पर बिगड़ा तो वे दुम दबाकर भागे। पत्नी को प्यार से समझाने लगा कि यह सब अंधविश्वास है, लेकिन उस बेचारी ने यही समझा कि ओझा की 'भभूत' काम कर रही है और बौराए बालम अब सुधर रहे हैं।"[10]

उनकी पत्नी का भूत-प्रेत और धर्म में प्रबल आस्था थी। इसीलिए घर-परिवार, बच्चों की रक्षा के लिए वे प्रत्येक वर्ष घर के देवी-देवताओं को लपसी-सोहारी चढ़ाया करती थीं। इस प्रकार संजीव और उनकी पत्नी दोनों वैचारिक दृष्टिकोण से दो ध्रुवों के प्राणी थे। एक के लिए पढ़ाई-लिखाई ही सबसे महत्वपूर्ण थी तो दूसरे के लिए यह संसार का सबसे बेकार कार्य। इसीलिए तो एकबार वह नरेन को किनारे ले जाकर कहती हैं–"तू इनका समझावत काहे नहीं। इनकर मति मारी गई है ...हमार जिनगी खराब होई गई है।"[11]

अतः विवाह जैसे संबंध के लिए संजीव दो जीवों के बीच में वैचारिक समरूपता को महत्वपूर्ण मानते हैं। वे अपनी कहानी **'सीपियों का खुलना'** में इस तरह के अरेंज्ड मैरेज का विरोध करते हैं। कहानी का नायक प्रदीप कहता है –'आई हेट सच शॉर्ट ऑफ इंपोज्ड लव।' ललिता, कितने आश्चर्य की बात है, जिस लड़के से लड़की बिल्कुल अंजान रहती है, समाज एक गैरजिम्मेदार चपरासी की तरह शादी का स्टाम्प मारकर उसके साथ बाड़े में बंद कर देता है, खँसी-बकरी की तरह। उसके सामने वह ऑपरेशन टेबुल के मरीज की तरह लेट जाती है। वह उसे प्याज की परतों की तरह खोलता है। कुत्ते की तरह नोचता-खसोटता है। मुँह भी कायदे से बाद में ही देखता है और उसकी रुचियों और मिजाज को देखने का तो तब सवाल

---

10. काशिद गिरीश (संपादक), कथाकार संजीव, लेख – सृंजय, 'स्क्रैप और स्क्रिप्ट के बीच खड़ा एक आदमी', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 27

11. वागर्थ, अगस्त-2004, आलेख - नरेन कथाकार संजीव, तनिक बोझवा उठाई दा, भारतीय भाषा परिषद, पृष्ठ संख्या – 56

ही नहीं पैदा होता।"[12]

खैर, हमारे भारतीय परंपरागत समाज में अरेंज्ड मैरेज सदियों से होता आया है और हम इसे चाहे-अनचाहे, निभाते भी आए हैं। पति-पत्नी के बीच छत्तीस का आँकड़ा होने के बावजूद दोनों के बीच एक अलग तरह की 'केमिस्ट्री' काम करती है और एक अलग ही अंदाज में दोनों एक-दूसरे को प्यार करते हैं। तभी तो नरेन के शब्दों में –"संजीव भाई भौजाई को कहेंगे "एई लब-लब...।' भौजाई पूछेंगी, 'अब का भया?' मैंने कभी जानना चाहा था। लब-लब माने? लबर-लबर बोलने वाली न का।' संजीव भाई ने आँखों में शैतानी भरी चमक लेकर मेरा ज्ञान वर्द्धन किया था। 'नहीं यार! लब-लब माने लव-लव... माई लव-लव! नहीं बूझे न की?' मैं बूझा और मगन हो गया।"[13]

संजीव से उनकी पत्नी की पहली मुलाकात भी कम दिलचस्प नहीं है। पहले गाँवों में शादी के बाद भी पति-पत्नी लोकलाज के कारण जल्दी मिल नहीं पाते थे। घर अतिथियों से भरा रहता था और पत्नी हाथ भर के घुँघट में। अतः आपसी बातचीत और मेल-मिलाप ही संभव नहीं हो पाता था। नरेन लिखते हैं –"किसान घर की मजबूत कद-काठीवाली हमारी मेहनतकश भौजाई जानवरों को खिलाने के लिए बाजरे का हरा चारा लाने गई थी खेतों में। संजीव भाई की एक भौजाई ने उनको बोझा उठाने में मदद करने के बहाने खेत में भेज दिया ताकि वे अपनी दुल्हन से एकांत में मिलने का मौका पा सकें। ...भकुए-सा जा कर अपनी नवब्याहता घरवाली के सामने खड़े हो गए ...भौजाई ने सीधे भाई साहब की आँखों में झाँका और कहा –'तनिक बोझवा उठाई दा' हड़बड़ाते हुए उन्होंने बोझा उठाने में मदद कर दी। ...भौजाई घर की ओर बढ़ गई। हाऊ अनरोमांटिक! है न?"[14]

---

12. *संजीव, 'सीपियों का खुलना', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 258-59*

13. *वागर्थ, अगस्त-2004, आलेख - नरेन कथाकार संजीव, तनिक बोझवा उठाई दा, भारतीय भाषा परिषद, पृष्ठ संख्या – 56*

14. *वही, पृष्ठ संख्या – 59*

संजीव की चार पुत्री और एक पुत्र सहित पाँच संताने हैं, जिसमें बड़ी बेटी मंजू मंदबुद्धि है जिसके भरण-पोषण की आजीवन जिम्मेदारी है। इतने बड़े परिवार के भरण-पोषण के लिए संजीव को ट्यूशन भी पढ़ाना पड़ता था। यही कारण है कि कुल्टी में सब उन्हें मास्साहब के नाम से ही जानते हैं। अपने ट्यूशन पढ़ाने की इसी पीड़ा को संजीव ने **'मरोड़'** कहानी में व्यक्त किया है –"उफ! कितने हाथ-पाँव मारे, मगर इस ट्यूशन के मकड़ी के जाले से कहाँ निकल पाए।"[15]

संजीव साहित्यिक मोर्चे पर जितने सफल रहे हैं, पारिवारिक मोर्चे पर उतने ही विफल। पूरी जिंदगी पत्नी के साथ गुजारने के बावजूद भी पत्नी की नजर में वे एक अव्यवहारिक इन्सान हैं। बेटा-बेटियों में से किसी ने भी कभी संजीव के मन की व्यथा को महसूस कर उनसे संवेदनशील हृदय से बात करने की जहमत नहीं उठाई। जबकि यह उनके अंदर की जिजीविषा ही थी, जो संपूर्ण जीवन पारिवारिक आपूर्ति और साहित्य रचना के लिए संघर्षरत रहें। उन्होंने कई बार लेखक नरेन से इस बावत बात की –"मैंने इन लोगों को यथासाध्य अच्छी ज़िंदगी देने की कोशिश की है, लेकिन पता नहीं कहाँ चूक हो गई मुझसे? पत्नी ठीक से सहयोग ही नहीं करती। कभी-कभी घर की स्थिति एकदम असहनीय बन जाती है। घर काट खाने को दौड़ता है। जो कुछ लिखा है, उससे बहुत ज्यादा संतोष नहीं है मुझे। काश! दस साल चैन से लिखने के लिए मिल जाते तो मैं कई महत्वपूर्ण कृतियाँ हिंदी साहित्य को दे सकता था।"[16] वे अपने जीवन में पूरा ऐशो-आराम की कामना नहीं करते हैं अपितु कुछ शांति भरा लमहा चाहते हैं जिससे वे अपनी रचनागत कार्य कर सकें। नौकरी करते हुए अपने साहित्य सृजन के कार्य के लिए 4-6 घंटे का वक्त चाहना क्या किसी साहित्यकार के लिए बड़ा गुनाह है? कॉलेज के दिनों से ही संजीव की रुचि साहित्य के प्रति बढ़ रही थी। उन दिनों कॉलेजों में अंताक्षरी की

---

15. *संजीव, 'मरोड', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 41*

16. *वागर्थ, अगस्त-2004, आलेख - नरेन कथाकार संजीव, तनिक बोझवा उठाई दा, भारतीय भाषा परिषद, पृष्ठ संख्या – 59*

प्रतियोगिता होती थी और इस प्रतियोगिता ने उन्हें नये छंद और तुकबंदी तैयार करने में बड़ी मदद की। उस समय कॉलेज के अंताक्षरी प्रतियोगिता के वे चैंपियन थे। साहित्य के प्रति अपनी रुचि का श्रेय वे अपने हाई-स्कूल के शिक्षकों को देते हैं। अपनी साहित्यिक प्रेरणा के संबंध में वे लिखते हैं –"भाषा के प्रति मोह बढ़ रहा था। प्रकृति के रूपों में उलझा-उलझा मन! पंत प्रिय कवि। प्रेमचंद, सुदर्शन, शिवपूजन सहाय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की रचनाओं से अनुप्रेरित होकर पहली हृदय-परिवर्तन की कहानी हस्तलिखित पत्रिका **'पल्लव'** में। मौसमी लेखन में कविता, कहानी, निबंध के पुरस्कार।"[17]

परिवेश

संजीव ने जिस परिवेश में सांस लिया वो उनकी आशा और आकांक्षा के अनुरूप बिल्कुल नहीं था। पूरा समाज सामंती शोषण, जातिगत विभेदीकरण नीति और भयावह आर्थिक विषमता का अखाड़ा बना हुआ था। धर्म इसे जोड़ने के बजाय इसमें अंधविश्वास का जहर घोल कर इसे तोड़ रहा था। अलग-अलग वर्णों के लिए धर्म के अलग-अलग नियम थे। गाँवों में ठाकुर और ब्राह्मण दलितों के साथ पशुवत व्यवहार करके उनसे घृणा करते थे और मजदूरी करवाने के लिए उन्हें कोल्हू के बैल की तरह पेर देते थे। हलवाही करने के अलावा तथाकथित निचला तबका और उनकी स्त्रियाँ बेगारी करने के लिए विवश थीं। मजदूरी के नाम पर इन्हें अधिक चोकर मिली हुई बासी चीमड़ रोटी, घुन खाये हुए मकई के कुछ दानें, कोदों इत्यादि मिलते थे जो इनके पारिवारिक भूख के आगे अपर्याप्त थे। अपने ग्रामीण परिवेश को याद करते हुए वे लिखते हैं –"मुड़कर देखता हूँ तो लगता है, कोई कह रहा है, 'अरे उमराव फूआ आई हैं, बड़की ठकुराइन', सलाम करो। क्या कहा, 'अपनी फूआ भी आई हैं – बिजेथुआ मेले से गट्टा और चोटे की जलेबी लेकर?' तो क्या हुआ, उन्हें बाद में प्रणाम किया जा सकता है। अरे घोंघा कहीं का, पंडित जी आए हैं, उठकर गोड़ नहीं धरना! देख, ठाकुर

---

17. संजीव, 'सर्कस', पहला संस्करण : 2004, पहली आवृत्ति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – भूमिका अपनी बात से VIII

आ रहे हैं, खाट से उठकर 'जै-राम बाबू' कहना, ओह, इतने उज्जर कपड़े मत पहनो, रंज हो जाएँगे और यह गिलास, इसमें धोबी-चमार को पानी दे दिया?' फेंको-फेंको गिलास! अब तुमरे-दरवज्जे कौन बड़मनई पानी पियेगा?"[18]

संजीव ने अपने पारिवारिक पीड़ा को **'पिशाच'** कहानी में व्यक्त किया है। यही कारण है कि गैर-बराबरी से भरे इस बिषैली वायुमंडलीय परिवेश में संजीव के परिवार का दम घुटने लगा और उनके परिवार के कुछ सदस्यों का गाँव से पलायन हो गया। उनके पिता और काका कुल्टी में आकर बस गये। यहीं अर्थाभाव और गरीबी से जूझते हुए संजीव ने अपनी पढ़ाई पूरी की और आयरन एंड स्टील कंपनी में नौकरी की। परंतु यहाँ का परिवेश भी शोषक और शोषित के मामले में ग्रामीण परिवेश से कुछ ज्यादा अलग नहीं था। गाँव में जहाँ ब्राह्मणवादी सामंती शोषण, जातिगत विभेद-विद्वेष और घृणा की आग में साधारण व्यक्ति जल रह था, वहीं औद्योगिक कस्बों में मालिक-मजदूर शोषण, ठेकेदार-मजदूर, मजदूर-यूनियन, अस्थायी-स्थायी कार्य और मैनेजमेंट तथा युनियनों की मिलीभगत के बीच साधारण मजदूर पीड़ित एवं शोषित थे। अतः ग्राम से पलायन के बाद भी खेतीहर मजदूरों और छोटे किसानों के जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया था, हाँ शोषक जरूर बदल गया था। पहले शोषक सामंत थे और अब पूंजीपति। यहाँ तक कि उनके प्रति जातिगत घृणा में भी कोई विशेष तब्दीली नहीं आई। इन औद्योगिक कस्बों में भी बाबू साहब लोग पैदा हो गए और महाजनी सभ्यता का उदय करके लोगों का शोषण करने लगे। गाँव से कुल्टी संजीव को उनके काका ने पढ़ने के लिए लाया था। परंतु यहाँ के गोरे-गोरे अंग्रेजों को देखकर उनका मन ठीक उसी प्रकार भयभीत और आतंकित रहता, जिस प्रकार गाँव में ठाकुरों और ब्राह्मणों को देखकर! गाँव में उनके सामने खटिया पर नहीं बैठ सकते थे और यहाँ इनके सामने सर उठा के नहीं चल सकते थे जबकि देश को आजाद हुए चार-पाँच साल बीत चुके थे –"गोरे अँग्रेज जा रहे थे, काले अँग्रेज आ रहे थे। उनके चार-चार बीघे में फैले बंगले और मजदूरों के 150-200 वर्ग फूट के डेढ़

---

18. काशिद गिरिश (संपा.) 'कथाकार संजीव', संजीव, 'मैं और मेरा समय', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 16

कमरे के घोंसले – न बिजली, न पानी, न शौच, न सफाई, वह भी बहुतों को मयस्सर नहीं।"[19]

उनके पिताजी को रिटायर्ड होने तक क्वॉटर नहीं मिला जबकि संजीव को 34 वर्ष की नौकरी के बाद भी क्वॉटर नहीं मिला। हारकर उन्हें अपना आश्रय स्वयं बनवाना पड़ा। वह समय लूट-खसोट का था। मजदूरों का शोषण चरम पर था और जो न्यूनतम मजदूरी कोलियारी में मजदूरों को मिलती थी, उसमें से अधिकांश तो सूदखोर और रंगदार छीन लेते थे।

प्रकृति

किसी भी व्यक्ति की प्रकृति उसकी बोलचाल, रहन-सहन, चाल-चलन, आदतें, विचार, शारीरिक बनावट, जीवन-मूल्य इत्यादि के ईर्द-गिर्द घुमती हैं। और इसी का छाप उनकी रचनाओं पर भी पड़ता है। जीवन की विषम परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अपने ध्येय प्राप्ति की तरफ आगे बढ़ने वाले संजीव के जीवन की एक विशेषता यह भी थी कि वे किसी भी व्यक्ति की बात बहुत ही जिज्ञासु भाव से अत्यधिक महत्व देते हुए सुनते हैं। लेखक नरेन के साथ पहली मुलाकात में ही उनकी बातों से प्रभावित होकर उनके दबदबे में आ गए थे। बाद में काफी अंतरंग हो जाने के बाद संजीव ने हँसी-हँसी में यह बात नरेन को बतायी –"नरेन, उस रोज तो आपने हमको अच्छा हड़काया था। मैं घबराया हुआ था कि आज किस पहाड़ के तले आना हुआ।"[20] उनका आचरण अत्यंत सौम्य और शालीन है। वे अपनी बात को कभी भी दबंग अंदाज में रखने की कोशिश नहीं करते हैं। अपितु आत्मविश्वास के साथ शांत लहजे में तथ्यों के साथ अपने कथ्य को रखते हैं और इस बीच अगर कोई अपने तर्क को लेकर हठी हो जाए, तो वे बहस-बाजी में नहीं उलझते हैं –"किसी कन्फ्रंटेसन में नहीं उलझेंगे, कम से कम

---

19. *काशिद गिरिश (संपा.) 'कथाकार संजीव', संजीव, 'मैं और मेरा समय', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 17*

20. *वागर्थ, अगस्त-2004, आलेख - नरेन कथाकार संजीव, तनिक बोझवा उठाई दा, भारतीय भाषा परिषद, पृष्ठ संख्या – 59*

सभा-संगोष्ठियों में या आपसी बहसबाजियों में। कुछ ज्यादा ही सौम्य और शालीन आचरण के अभ्यस्त रहे हैं।"[21]

संजीव ने कभी भी अपना इमेज मैनेजमेंट करने की कोशिश नहीं की। वे इस बात को बताने से कभी नहीं हिचके कि उनका जन्म एक गरीब खेतीहर मजदूर के घर में हुआ था। संजीव स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे अगर अपने चाचा के साथ कुल्टी नहीं आए होते तो आज गाँव में किसी की हरवाही कर रहे होते। संजीव जैसा हैं वैसा ही दिखते हैं। वे दिखावा में बिल्कुल विश्वास नहीं करते हैं। यही कारण है कि नरेन जब पहली बार संजीव से मिलने जाते हैं –"गीला होकर ढेला बन गया भात और पतली दाल, जिसमें नमक भी शायद नहीं पड़ा था। आपस में बातें करते-करते सहज भाव से हम दोनों ने यही खाना खाया था।"[22] संजीव के लिए मित्र उनके जीवन के स्तंभ हैं क्योंकि उनका स्वभाव ही मित्रवत है। वे बातचीत में यकीन रखते हैं। दूर-दराज से मित्र उनसे मिलने आते हैं या पत्र द्वारा संवाद करते हैं। बचपन में अपने मित्र सूरज के साथ मिलकर प्रधानमंत्री के नाम पत्र लिखा करते थे। आगे चलकर नक्सलवादी आंदोलन में शहीद हुए अपने मित्र सूरज को हमेशा याद करते हैं और उनकी विधवा को आर्थिक मदद भी करते हैं। लेखक नरेन लिखते हैं –"मेरी स्मृति में अब भी वे दृश्य जिंदा हैं। अषाढ़ की धुली-धुली सी चमकीली नीली शाम। जी.टी.रोड़ के किनारे कल-कल बहते साफ पानीवाले नाले से सटे बाड़ के पीछे नयनतारा के घने झाड़, जिसमें असंख्य दुग्ध-धवल फूल खिले हुए हैं। सूरज भाई की विधवा नीले चौड़े पाड़वाली उजली साड़ी पहने छोटे से बगीचे में खड़ी हैं और उनका कुशल-क्षेम पूछते हुए श्रद्धावनत उनके सामने खड़े हैं संजीव।"[23]

---

21. वागर्थ, अगस्त-2004, आलेख - नरेन कथाकार संजीव, तनिक बोझवा उठाई दा, भारतीय भाषा परिषद, पृष्ठ संख्या – 59

22. काशिद गिरीश (संपादक), कथाकार संजीव, लेख – नरेन, 'जिंदगी-जिंगी तुझसे शिकवा करूँ तो कैसे करूँ?' संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 49

23. वही, पृष्ठ संख्या – 52

यह भी उनकी प्रकृति की एक विशेषता रही है कि बचपन से ही वे जिज्ञासु प्रवृत्ति के रहे हैं। और इसी जिज्ञासु वृत्ति ने उन्हें खोजी बनाया, खोज भी ऐसा-वैसा नहीं, शोध के स्तर तक। उनके लिए उनकी प्रत्येक रचना शोध से गुजरना है। और इसी शोधी वृत्ति ने उन्हें यथार्थवादी बनाया और उन्होंने अनेक अनछुए विषयों को छुआ – **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** में डाकू समस्या, जाति, धर्म, पूंजीवादी-व्यवस्था, शोषण, सामंती-व्यवस्था; **'सावधन! नीचे आग है'** में कोयलांचल में काम करने वाले मजदूरों की दुर्दशा, सुदखोरी, माफियातंत्र, ठेकेदारी, सरकारी संपत्ति की लूट; **'सर्कस'** में सकर्स के बाह्य चमक-दमक के साथ उसकी आंतरिक दुनिया एवं उसमें काम करने वाले कलाकारों का दर्द, उपेक्षा, शोषण, त्रासदी एवं सर्कस मालिकों का अत्याचार इत्यादि। वही **'सूत्रधार'** में भोजपुरी के शेक्सपीयर भिखारी ठाकुर के त्रासद जीवन के साथ भोजपुरी लोक-जीवन एवं लोक-संस्कृति की झलक मिलती है। वे चाहते हैं कि हिंदी का कथा-साहित्य त्रिकोणात्मक प्रेम कथा, पौराणिक, धार्मिक आख्यानों, मुगलों-सामंतों के प्रभाव से बाहर निकले और नजरें उठा कर देखे कि किस प्रकार विज्ञान और टेक्नोलॉजी ने मनुष्य के जीवन स्तर को नये-नये क्षितिज से जोड़ दिया है इसलिए पर्यावरण, स्पेस, अनुवांशिकी, जीवन-मृत्यु, अमरत्व, टेस्ट-ट्यूब बेबी, आधुनिक तकनीक इत्यादि पर कहानी अपेक्षित है। **'सूत्रधार'** लिखने से पहले कई वर्षों तक भिखारी ठाकुर के गाँव कुतुबपुर और उसके आस-पास के क्षेत्रों में भटकते रहे। भिखारी ठाकुर को जानने-समझने वाले लोगों से उनके बारे में पूछते रहें, सोनपुर के मेले में दो रात भिखारी ठाकुर का नाच देखते रहें और वहीं गाँव वालों के साथ दरी पर सोते रहें। ठीक नामवर सिंह के कथन के विपरीत जिसमें उन्होंने कथाकारों को सलाह दी थी –"कहानी सरासर गप्प होती है और कथाकारों को यथार्थ के अनुभव के पीछे भागने की कोई जरूरत नहीं है।"[24]

संजीव स्वभाव से अत्यंत संकोची रहे हैं। कोयलांचल के समस्या के ऊपर प्रकाशित इनके उपन्यास में कोयलांचल के लोगों ने अपना सुख-दुख देखा और इनको सम्मानित करने

---

24. वागर्थ, अगस्त-2004, आलेख - नरेन कथाकार संजीव, तनिक बोझवा उठाई दा, भारतीय भाषा परिषद, पृष्ठ संख्या – 59

का फैसला किया, परंतु संजीव इस सम्मान के लिए कदापि तैयार नहीं थे वे चाहते थे कि सम्मान अगर मिलना चाहिए तो उन्हें जो इन समस्याओं से जूझ रहे हैं। बाद में लेखक सृंजय ने बेहद कुटील तरीके से समझाते हुए इन्हें मनाया –"लेखक महोदय, जनता आपको दुशाला देने के लिए नहीं बुला रही है। वहाँ पाठकगण आपसे इस किताब से संबंधित सवाल करेंगे और आपको उनका जवाब देना होगा। यदि जवाब से कतराना चाहते हो तो हम तुम्हारी किताब की प्रतियाँ चौक पर जलाएँगे, ***'अंधेरे बंद कमरे का लेखक'*** कहकर तुम्हारी भर्त्सना करेंगे, तुम्हारी अनुपस्थिति में दो मजबूत पादुकाओं को अच्छी तरह सम्मानित करके अगले दिन यहीं आकर तुम्हारी ग्रीवा में पहना देंगे।"[25]

स्त्री का वे काफी सम्मान करते हैं। स्त्रियाँ भी उन पर आँख मूँद कर विश्वास करती हैं। सर्कस उपन्यास लिखते समय एक नामी कंपनी के सर्कस की स्त्रियों से काफी हेल-मेल बढ़ाया और इसका प्रभाव यह पड़ा कि एक सर्कस सुंदरी अंतिम शो समाप्त करने के बाद तीन दिन इनके कमरे में आकर सोई, और सारी कथा सुनाई। किसी को धोखा देना इनकी फ़ितरत में नहीं। प्रसिद्ध लेखक होने के नाते कई पाठिकायें भावुक होकर कुछ ज्यादा करीब आने की कोशिश कीं। परंतु संजीव ने उन्हें समझा-बुझाकर इस आतंक से मुक्ति पाई। लेखक नरेन के प्रेम संबंधी एक प्रश्न के जवाब में वे शरमाए-शरमाए से बोले –"अरे यार ! प्रेम-व्रेम के मामले में मैं एकदम नक्कारा साबित हुआ हूँ। यह सब मेरे वश की चीज नहीं है।"[26] उन्होंने अपनी बहुत-सी कहानियाँ जैसे – **'जसी-बहू', 'घर चलो दुलारी बाई!', 'झूठी है तेतरी दादी', 'मानपत्र', 'सागर सीमान्त'** इत्यादि में स्त्रियों के प्रति अपने भावनात्मक लगाव को प्रदर्शित किया है। इन्होंने कभी भी अपने कथा-साहित्य में स्त्रियों के यौन-संबंध को चटाखेदार सामग्री के रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश नहीं की। उन्होंने हमेशा स्त्री के चेतना, समानता और

---

25. काशिद गिरीश (संपादक), कथाकार संजीव, लेख – सृंजय, 'स्क्रैप और स्क्रिप्ट के बीच खड़ा एक आदमी', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 30

26. वागर्थ, अगस्त-2004, आलेख - नरेन कथाकार संजीव, तनिक बोझवा उठाई दा, भारतीय भाषा परिषद, पृष्ठ संख्या – 59

सम्मान को लेकर साहित्य की रचना की है, जो उनके कद को और बढ़ा देता है। वे अपने जीवन में भाभियों को काफी महत्व देते हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था –"भाभी! एक अकेले रिश्ते में माँ, बहन, सखी, स्नेहमयी प्रेमिका भी जैसे सारे रिश्ते समंजित होते हैं। मैंने भाभियों को किसी स्तर पर जितना पाया है, वहाँ से संजीवनी की कुछ बूँदे ले लीं जीवन के लिए जरूरी लगीं।"[27]

संजीव एक ईमानदार प्रकृति के साहित्यकार हैं। दोहरे स्तर का जीवन उन्हें कदापि पसंद नहीं। उनकी रचनाएँ कोरी-कल्पना नहीं होती हैं। उनकी रचनाएँ यथार्थवादी और उद्देश्यपरक है –"वह अपने देश का सच्चा सपूत जिसने वह नहीं लिखा जो वह लिख सकता था, वह भी नहीं उसने वह लिखा, जिसे उसकी देश को जरूरत थी।"[28] जिनका वे सबसे ज्यादा सम्मान करते हैं वे हैं भगत सिंह। भगत सिंह के बाद वे अपने मित्र सूरज का बहुत सम्मान करते हैं जिन्हें याद कर वे फूट-फूट कर रो भी पड़ते हैं –"जिस चीज से सबसे ज्यादा नफरत है, वह आदमी का कमीनापन। जातिवाद, सामंतवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, विस्तारवाद, उपनिवेशवाद – इसी कमीनेपन के फूल और फल है और मेरे लेखन के ये ही निशाने रहेंगे।"[29] इसीलिए वे आधुनिकतावाद, उत्तर-आधुनिकतावाद या जादुई यथार्थवाद जैसे शब्दों में नहीं उलझते हैं बल्कि सीधा-सीधा शोषितों के पक्ष में खड़े नजर आते हैं।

संजीव का व्यक्तित्व अंत:संघर्ष का है। इतनी रचना करने के बाद भी साहित्य रचना की लिप्सा समाप्त नहीं हुई है। वे अक्सर रात को ही लिखते हैं परंतु साहित्य रचना की प्रक्रिया उनके दिमाग में चौबीसों घंटे चलती रहती हैं। उनके मन में हमेशा कुछ ज्यादा न लिख पाने

---

27. लोढ़े रामचंद्र मारूति, 'संजीव व्यक्तित्व एवं कृतित्व', प्रथम संस्करण : 2012, ए.बी. पब्लिकेशन वाराणसी, पृष्ठ संख्या – 24

28. कथादेश, संपादक-हरिनारायण, सितंबर : 1997, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 26

29. संजीव, अपनी बात, पहला संस्करण : 2004, पहली आवृति : 2010, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, सर्कस की भूमिका से, पृष्ठ संख्या – ix

की कचोट रहती है –"मुझे अफसोस होता है कि ये दिन-रात सिर्फ 24 घंटों के ही क्यों होते हैं ...कि क्यों थक जाता है इतना जल्दी समय, कि क्यों चुक जाती इतनी जल्दी उम्र ! एक मुश्त लगातार चार-छह घंटों की चाहना क्या असंभव चाहना है? नौकरी और अन्य व्यस्तताओं से बीन-बटोरकर जो समय मिलता है, वह क्यों इतना कटा-फटा है कि अनर्गल जाया हो जाता है?"[30] और मन में एक बेचैनी-सी रहती है कि प्रकृति के जैसा रूप, रंग, आकार, गंध, रचनाओं में क्यों नहीं आती है।

इसी प्रकार एक और बात जो हमेशा उनको खलती है, वह है भारतीय जातिगत समीकरण। सवर्ण और दलित समाज में बँटी हुई जाति-व्यवस्था के वे घोर विरोधी रहे हैं। उनकी यह पीड़ा उनके प्रथम उपन्यास **'किशनगढ़ के अहेरी'** (1981) से लेकर **'सूत्रधार'** (2002) तथा प्रथम कहानी-संग्रह **'तीस साल का सफ़रनामा'** (1981) से लेकर **'झूठी है तेतरी दादी'** (2012) तक में देखने को मिलती है। वे समाज से जाति-व्यवस्था के इस नासूर का सदा के लिए खात्मा चाहते हैं। जाति आधारित राजनीति को वे देश और समाज की उन्नति के लिए बहुत घातक समझते हैं, जबकि आज की पूरी राजनीतिक व्यवस्था ही जाति आधारित है। जातिगत आबादी के आधार पर राजनीतिक पार्टियाँ अधिकतम आबादी वाली जाति के उम्मीदवार को चुनाव में टिकट देती है। बिहार में जातिगत जनगणना की रिपोर्ट उजागर करने के लिए ठीक चुनाव के समय ही हो-हल्ला मचा। संजीव पिछड़ी जातियों के जड़ से उत्थान में विश्वास रखते हैं, आरक्षण को वे सम्यक निदान नहीं मानते हैं। इनके उत्थान के लिए स्वच्छ हृदय से पर्याप्त रोजगार उत्पन्न करने की आवश्यकता पर वे बल देते हैं, परंतु **'हत्यारे'** नामक कहानी के माध्यम से विकास के नाम पर सरकार की जमीन अधिग्रहण नीति का पर्दाफाश भी लेखक ने किया है। किस प्रकार पूंजीपति, सरकार की आड़ लेकर अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सारे पर्यावरण और गरीब आवाम की हत्या करते जा रहे हैं। यहाँ पूंजीपति, लोगों की बुनियादी जरूरत पानी पर भी अपना अधिकार जमा लेते हैं –"सर्वसाधारण

---

30. काशिद गिरिश (संपा.) 'कथाकार संजीव', संजीव, 'मैं और मेरा समय', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 19

को सूचित किया जाता है कि आज दिनांक 10 जून से रतना नदी को इसके सर्वस्तरीय विकास के लिए सरकार की 'बूट' योजना के तहत अधिगृहित कर, पाँच साल के लिए रतन लाल गोयनका को सौंप दिया गया है। नदी के जल या नदी की किसी भी संपत्ति का बिना अनुमति के उपयोग या उपभोग नहीं किया जा सकता। ऐसा करने वाले दंडित होंगे।"[31] भूमि-आंदोलन और उसका हश्र हम 'सिंगुर' और 'नंदीग्राम' में देख चुके हैं। किसानों का हित यहाँ सत्ता और विपक्ष किसी के द्वारा नहीं हुआ। आज हम अपने देश में ही पानी खरीदकर पीने को मजबूर हैं। स्वच्छ पानी उपलब्ध करवाना आज एक राजनीतिक मुद्दा है, मौलिक जिम्मेदारी नहीं।

संजीव वैचारिक दृष्टिकोण से मार्क्सवादी है। समझदारी विकसित होने के शुरुआती दिनों से ही वे मार्क्सवादियों द्वारा चलाये जा रहे समाजवाद, आर्थिक समानता, सामाजिक बराबरी की भावना से प्रेरित हुए और इसे अपनी रचनाओं का केंद्रीय भाव बनाया। संजीव विज्ञान के छात्र रहे हैं, और नक्सलवादी आंदोलन से प्रभावित भी। जिसके कारण इनकी वैचारिकता में तार्किकता और क्रांतिकारी आवेग दोनों ही देखा जा सकता है। परंपरा में इन्हें धार्मिक अंधविश्वास, तंत्र-मंत्र और अंध श्रद्धा मिला था, जिसके चक्कर में जीवन के प्रारंभिक दिनों के कुछ समय व्यर्थ ही नष्ट हो गये। पर अब वे प्रत्येक चीज को अपनी वैचारिक दृष्टिकोण की कसौटी पर कसते हैं –"उन्होंने सवाल किये **'रामायण'** क्या है, **'महाभारत'** क्या है, **'गीता'** क्या है, **'पुराण'** क्या है, **'कुरान'** और **'बाइबल'** क्या है, इतिहास क्या है, सभ्यता क्या है, संस्कृति क्या है, दुनिया और इसकी कारण शक्तियाँ क्या हैं। जो सोचकर बैठे हो, वही सच है, या उसके अलावा भी कुछ है, फिर से देखो, पढ़ो और सोचो। सच क्या है यह संरचनात्मक पदार्थ और ऊर्जा की हकीकतें, तुम्हारी अपनी और सामाजिक, वैश्विक हकीकतें, सभ्यता के नाम पर की गई असभ्य चालाकियाँ, जिसे न जानने की अज्ञानता में सत्य, शिव और सौंदर्य के गलत मिथक गढ़े गए हैं, विकास की गलत व्याख्याएँ दी गई हैं, मुट्ठीभर मक्कार लोग अपने स्वार्थ के लिए दुनिया की वृहत्तर आबादी को वंचित करते हुए

---

31. संजीव, 'हत्यारे', (झूठी है तेतरी ददी), प्रथम संस्करण : 2012, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या –57

अपनी वैष्णवी मुस्कानों से हमें भरमाते रहे हैं। इन मुस्कानों की हकीकत क्या है?"[32]

अपने इस विकसित दृष्टिकोण का श्रेय वे अपने शिक्षकों, कुछ मित्रों, बड़े भाई और 'दिनमान' पत्रिका को भी देते हैं। थोड़ी देर से ही सही, पर संजीव अब उपरोक्त सवालों में उलझे रहने लगे। और इन्हीं सवालों-उलझनों ने उन्हें मार्क्सवादी राह पर लाया। आजादी के तीस साल बाद भी जब आम जनता की अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं आया, अमीर और अमीर बनता गया, गरीब और गरीब तो उनकी उलझन वृहत्त से वृहत्तर होती गई। यह वृहत्तर आयाम ही उनके कथा-साहित्य में रूपांतरित हुई। उनकी पहली कहानी संग्रह **'तीस साल का सफ़रनामा'** में ही उनकी छटपटाहट देखने को मिलती है –"इन तमाम दौरों से गुजरते हुए आज सूरजा किसान से मजूर बन गया है और नम्बरदार किसान से महाजन।"[33] तो उनकी संवेदना नक्सलियों द्वारा अपनाई गई मार्क्सवादी विचारधारा से जुड़ी और **'अपराध'** कहानी का जन्म हुआ। संजीव के आदर्श पुरुष हैं भगत सिंह। और भगत सिंह ने लिखा था –"इसे आँखें मूँदकर न पढ़े। यह न समझें कि जो इसमें लिखा है वह सही है। इसे पढ़ो, इसकी आलोचना करो और इसकी मदद से अपने विचार बनाने की कोशिश करो।"[34] भगत सिंह के इस आलोचनात्मक प्रस्ताव ने भी संजीव के वैचारिक दृष्टिकोण में काफी मदद की।

संजीव के व्यक्तित्व का एक और सशक्त पहलू है, इनका साहित्यिक चिंतन। वे हमेशा साहित्य के स्तर और उद्देश्य के प्रति सचेत रहते हैं। उनकी रचनाएँ हमेशा यथार्थवादी होती हैं और जनता के प्रति समर्पित रहती हैं। उनकी चिंता का प्रमुख केंद्रबिंदु भी यही है कि जिस पाठक के लिए जो रचनाएँ लिखीं गई हैं, उन पाठकों तक वे रचनाएँ पहुँची कि नहीं? अन्यथा,

---

32. कथादेश, संपादक - हरिनारायण, सितंबर : 1997, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 21

33. संजीव, 'तीस साल का सफ़रनामा', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 34

34. लाल, सिंह (संपा.), 'चमन, जगमोहन : भगत सिंह और उनके साथियों के दस्तावेज', प्रथम संस्करण : जनवरी 2018, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 11-12

रचना की सार्थकता कहीं नहीं बचेगी। भारत जैसे वृहत्त देश में जहाँ प्रिंट मीडिया की पहुँच ही कुछ सीमित प्रतिशत जनता तक है, वहाँ साहित्यिक रचना को किसी निर्दिष्ट पाठक तक पहुँचाना, वास्तव में एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। संजीव ने साहित्य का स्तर बचाये रखते हुए इसे अश्लीलता से सर्वथा दूर रखा। शिवमूर्ति की कहानी **'तिरिया चरित्तर'** के हंस में प्रकशन पर वे पत्रिका के संपादक राजेंद्र यादव पर भी ऊँगली उठाने से नहीं हिचके –"हंस को जोड़ने का सवाल आएगा तो प्रेमचंद से जोड़ेंगे और आलिंगन के पिसाव में स्तनों के दरकने की दृष्टि लेंगे परवर्ती किसी हंस से।"[35] उन्होंने हमेशा वही मुद्दा उठाया जो देश और समाज के हित में था।

रचना संसार

अब एक रचनाकार के रूप में संजीव के रचनात्मक संघर्ष एवं उनके पात्रों द्वारा व्यक्त विचारों को उनके रचना-संसार के अंतर्गत समझने का प्रयास करेंगे। कोई भी रचना विचार शून्य नहीं होती है। किसी घटना-दुर्घटना से प्रेरित होकर लेखक के अंदर एक विचार उदय होता है जो उनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है। अतः रचनाकार के विचारों को उनकी रचनाओं में व्यक्त पात्रों के कथनों, संदर्भों में ढूँढने का प्रयास करना चाहिए।

संजीव जमीन से जुड़े कथाकार हैं। उनका सारा रचनाकर्म सिर्फ और सिर्फ जनता को समर्पित है –"यह अपने अंचल के लोगों से खूब मिलता है, मगर अपनी लेखकीय पहचान छुपाकर। इससे उसको उनके निजी जीवन में सेंधमारी करने में सहूलियत होती है। यह चुपके-चुपके अपनी रचनाओं का ताना-बाना बुनता रहेगा, उनके बोलने-चालने की शैली, रहन-सहन का ढंग नोट करता रहेगा।"[36] और फिर उसे अपने विचारों की चासनी में चस कर आदर्शों की कसौटी पर कसकर गढ़े गए पात्रों को लेकर एक रचना के रूप में पाठक को परोसेंगे। और जब उनका यह रचनागत आदर्शवाद वास्तविक जीवन में खंडित होता है तो रचनाकार के हृदय

---

35. हंस, मई- 1991, पृष्ठ संख्या – 5

36. कथाकार संजीव, काशिद गिरीश (संपादक), लेख – सृंजय, 'स्क्रैप और स्क्रिप्ट के बीच खड़ा एक आदमी', संस्करण : 2008, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 31

से एक आह निकलती है। जिसे हम 1998 में रानीगंज में आयोजित *'संजीव लोक सम्मान समारोह'* में कहे गये उनके वक्तव्य से समझ सकते हैं–"**आरोहण** का भूपसिंह मैं ही हूँ, **'तिरबेनी का तड़बन्ना'** की तिरबेनी मैं ही हूँ। **'सागर सीमान्त'** का नसीबन मैं ही हूँ। **'अपराध'** का संघमित्रा, सचिन, सिद्धार्थ, **'मैं चोर हूँ, मुझ पर थूको'** का हबीब भी मैं ही हूँ और **'प्रेरणास्त्रोत'** की 'जंगली बहू' से आँखें चुरानेवाला अनुतपत लेखक भी मैं ही हूँ।"[37]

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि जब रचनाकार के आदर्शवाद का वास्तविक जीवन में धज्जियाँ उड़ती हैं तो वह अपने ही पात्रों से आँखें चुराने को विवश है।

संजीव के पात्र संघर्षशील हैं जो कुछ जैसा है, वे वैसा सहज से स्वीकार नहीं करते हैं, परिस्थितियों को स्वीकारने के लिए विवश होने पर भी वे उनके विरुद्ध अपना तीव्र विरोध दर्ज करवाते हैं। वे परिस्थितियों से भागते नहीं हैं, अपितु लड़ते-भिड़ते और संघर्ष करते हैं, चाहे वह **'जसी-बहू'** की जसी-बहू हो, **'अपराध'** के सचिन और संघमित्रा, **'मरोड़'** के मास्टर दीनानाथ या **'आरोहण'** के भूपसिंह आदि ढेरों पात्र हैं।

उन्होंने अपनी दूसरी कहानी संग्रह **'आप यहाँ हैं'** के अंतर्गत मुख्यतः स्त्रियों की व्यथा और संघर्षों को दिखलाया है। कहानी संग्रह की प्रथम कहानी **'जसी-बहू'** की नायिका जसी-बहू दलित और स्त्री होने के नाते दोहरे शोषण की शिकार है जिसकी कीमत उसे अपनी इज्जत और पति खोकर चुकानी पड़ती है। उनकी कहानी संग्रह **'झूठी है तेतरी दादी'** की कहानी **'झूठी है तेतरी दादी'** के अंतर्गत हम देखते हैं कि पर्दा-प्रथा, जाति और वर्ण की जकड़बंदी समाज में यथावत बनी हुई है जिसका आखेट तेतरी जैसी निश्छल-निरक्षर महिलाएँ होती हैं। सत्तर-पचहत्तर साल की बुजूर्ग महिला का भरा-पूरा सवर्ण परिवार उस महिला को इसलिए घर से बाहर कर देता है कि कभी अपना घर खोने के भय से उसने अपनी जात छुपायी थी। यहाँ इन्सान से बड़ी आदमी की जात है। दूसरी तरफ वह अपनी जाति से भी निष्कासित है। वह कुजात हो गई है। इसी कहानी संग्रह की कहानी **'मौसम'** के अंतर्गत हमने देखा कि ग्राम

---

37. संवेद 10, लोकसम्मान समारोह, रानीगंज 1998 में स्वयं संजीव का वक्तव्य, पृष्ठ संख्या – 134

समाज में पारंपरिक सामंती ढाँचा पूरी तरह चरमरा रहा है और एक नया अर्थवाद उभरकर सामने आ रहा है, जिसे सामंती समाज इतनी आसानी से स्वीकार करने वाला नहीं है। इसीलिए तो फत्ते सिंह कहते हैं –"जिन कहारों की गांड कटि गयी ...हमारी मेहरारून की डोली ढोते-ढोते, आज उनको हम ढोकर ले आयेंगे!"[38] इतना ही नहीं नूर के घर में मुफ्त की बिजली चलने से उसका करंट फत्ते सिंह को लगता है। वहीं **'लाज-लिहाज'** कहानी में वे जाति-व्यवस्था, लिंग-भेद, नारी-निर्यातन और गाँवों में राज करती हुई गैर-कानूनी खाप पंचायतों पर कड़ा प्रहार करते हैं। संजीव के पात्रों में इस जाति-व्यवस्था और गैर-कानूनी खाप पंचायतों की बेड़ी को तोड़ने की अजीब छटपटाहट है। कथाकार संजीव जनवादी धारा के प्रखर कथाकार हैं। वे विचारधारा और कथा-साहित्य की कला दोनों के प्रति प्रतिबद्ध हैं।

मनुष्य के जीवन के हर क्षेत्र में आज राजनीति प्रवेश कर गई है। शिक्षा, स्वास्थ्य, राष्ट्र, धर्म, साहित्य कुछ भी राजनीति से परे नहीं है। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार ने विकास की गंगा को रोक दिया है। आज टू जी स्पेक्ट्रम से लेकर चारा घोटालों तक का उदाहरण हमारे समाने है और इससे मुक्ति के लिए अन्ना हजारे का आंदोलन भी। इनकी कहानी **'सौ टके की टीचर'** प्रौढ़ शिक्षा पर सरकार की नीयत को उजागर करते हुए नागार्जुन के दु:खरण मास्टर को स्मरण कराती है, जहाँ शोषण के खिलाफ शिक्षा देने वाली (शिक्षिका) स्वयं शोषित है।

संजीव के कथा-साहित्य में गरीबी, बेकारी, आर्थिक शोषण, आर्थिक विषमता उभरकर समाने आई है। बाजार, पूंजीवाद के दौर में औद्योगिक जाल में फँसकर आज की युवा पीढ़ी सिर्फ एक क्रीतदास बनकर रह गई है। बेकारी की समस्या उसे कुमार्ग की ओर अग्रसर कर रही है। **'हत्यारे'** कहानी में मुहल्ले के युवक ही प्रदीप के पिता के घर में बेरोजगारी के कारण डाका डालते हैं।

धर्म हमारे समाज का मेरुदंड रहा है और धर्म के प्रति साधारणत: हमारी अंधश्रद्धा रही है। यही कारण है कि राजनेता हमारी धार्मिक भावनाओं को भड़काकर अपनी राजनीतिक

---

38. संजीव, 'मौसम', (झूठी है तेतरी ददी), प्रथम संस्करण : 2012, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या –13

रोटियाँ सेंकते हैं। **'ज्वार'** नामक कहानी में हमारे देश में हुए राममंदिर, बावरी मस्जिद विवादास्पद ढांचा के विध्वंस का प्रभाव बांग्लादेश में रह रहे हिंदुओं पर पड़ता है और उन्हें धर्म परिवर्तन करने के लिए विवश होना पड़ता है। आज विज्ञान के युग में भी ओझा, पूजा-पाठ, मन्नत, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि अंधविश्वासों जैसे समस्याओं का चित्रण संजीव के कथा-साहित्य में हुआ है।

संजीव मानते हैं कि मनुष्य के जैसा हिंसक और विषैला प्राणी इस पृथ्वी पर नहीं है। उसका विष, विषैले से विषैले साँप से भी खतरनाक है –"साफ कपड़ा पहन के हँस-हँस के बतियाने वाला मानुष से कौन जनावर ज्यादा खतरनाक है मेमसाहब!"[39] ऊँचे-ऊँचे ओहदे पर बैठे हुए सफेदपोश लोग जो देश की भोली-भाली जनता का खून चूस कर भी अपने को सभ्य दिखाने की कोशिश करते रहते हैं। उससे बड़ा जानवर कोई नहीं है। और इस प्रकार गरीबों और मजदूरों का शोषण करने वाले पूंजीपतियों, सामंतों, जमींदारों, मील-मालिकों, राजनेताओं का विरोध संजीव के पात्र करते हैं। वे गरीब और शोषित जनता की पलायन नीति से भी अत्यंत क्षुब्ध हैं। गाँव में जमींदारों के जूल्म से परेशान होकर शहर की ओर पलायन किया और अब शहर में पूंजीपतियों के भय से आंदोलन से पलायन। श्रमिक आंदोलन के लिए लोग ढूँढें नहीं मिलते हैं। मील-मालिक, मजदूरों में आपसी फूट उत्पन्न करवाकर श्रमिक आंदोलन को विफल कर देते हैं। आज श्रमिक-यूनियन और मैनेजमेंट के बीच मिलीभगत जग-जाहिर है। इसलिए संजीव मजदूर एकता के पक्ष में हैं –"साथियों, यह आपकी लड़ाई है और इसे आपको ही लड़ना है, इसमें बिचौलियों, स्टंटबाजों का क्या काम? ...सच्चे प्रजातंत्र का यह तकाजा है कि जिसे मजदूर चुनें वही आपकी मान्यता-प्राप्त यूनियन मानी जाए, और वही देश के उत्पादन और उत्पादकता, सामाजिक न्याय और राष्ट्रहित के लिए जरूरी भी...।"[40]

---

39. संजीव, 'आप यहाँ हैं', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 156

40. संजीव, 'नेता', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 30-31

सांप्रदायिकता एक ऐसा जहर है जिसका बीज बोकर राजनेता दंगा-फसाद करवाते हैं और वोट की फसल काटते हैं। धर्म की कट्टरपंथी और सांप्रदायिक शक्तियाँ अपने चपेट में आये निरीह, भोले-भाले मनुष्यों को पशु समझकर उसे दंगे की आग में बलि होने के लिए कुदा देती है। संजीव मानते हैं कि धर्म, वर्ण एक छलावा और नशा है जिसका सेवन सदियों से बहला-फुसलाकर, डरवाकर भोली-भाली जनता को करवाया गया है –"ई आपका जात-धरम, भगवान भी नशा है – एतना-एतना नशा नय पिलाओ तो हम आप लोग का नरक कैसे साफ करें?"[41]

कथाकार चाहता है कि व्यक्ति की पहचान उसके वर्ण, वर्ग से ऊपर उठकर कर्म के आधार पर सिर्फ और सिर्फ इन्सान के रूप में हो। क्योंकि भारत में गरीबी और लाचारी के बीच साँस ले रही बहुसंख्यक आबादी बेरोजगार और हताश है। दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र पूंजीपतियों के कैद में है। भ्रष्टाचार चरम पर है। चपरासी से लेकर न्याय-व्यवस्था तक बिकाऊ है। मीडिया सुविधावादी है। किसान अपने फसल का उचित मूल्य न पाने के कारण आत्महत्या करने को विवश हैं। किसान के ऋण के ऊपर सब्सीडी की राजनीति है। विदेशी कंपनियों के निवेश का द्वार खुला हुआ है। भारतीय रेल-दुर्घटना रोकने में सरकार विफल है। इन पर लगाम लगाने के बजाय रामनामी सरकार हमें *'बुलेट ट्रेन'* और *'मेक इन इंडिया'* के खोखले सपने में उलझा रही है जबकि हकीकत यह है कि सरकार अमीर को और अमीर तथा गरीब को और गरीब बनाने की चाल चल रही है। कथाकार शोषकों पर लगाम लगाने का आह्वान करते हैं। सांप्रदायिक सद्भावना और इन्सानियत के मंत्र को इस सांझी संस्कृति के लिए वरदान समझते हैं –"यह इन्सानी रिश्तों की खुशबू थी। आदमी मजहब और सियासत की सड़ी कैंचुलो से यकायक बाहर आता है, तो ऐसी ही ताजा खुशबू का अहसास होता है।"[42]

---

41. संजीव, 'जब नशा फटता है', संजीव की कथा यात्रा - संजीवःपहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 280

42. संजीव, 'मुर्दगाह', संजीव की कथा यात्रा पहला पड़ाव, संस्करण : 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 217

खुदा और ईश्वर के नाम पर लोगों को आपस में लड़वाने वालों को वे ललकारते हैं कि उपरवाला का हुक्म बताकर भोली-भाली जनत को उल्लू मत बनाइये। सांप्रदायिक लड़ाइयों का विश्लेषण करते हुए वे पाते हैं –"दुनिया के जंग में जितने लोग हलाल नहीं हुए, उससे कहीं ज्यादा मजहबी लड़ाइयों में मारे गये। इस हवाई लड़ाइयों की सिर्फ दो वजहें हैं – अपना-अपना रोब गालिब करना और इन्सान को बुनियादी जरूरतों की लड़ाई से दूर ले जाना। खुदा-खुदा ईश्वर-ईश्वर चिल्लाते रहो, भूखे मर जाओगे।"[43] इसलिए हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन, यहूदी सभी धर्मों के लोगों को इन विघटनकारी शक्तियों से सावधान रहते हुए एकजुट होने का आह्वान करते हैं।

निष्कर्ष : संजीव के परिवार, परिवेश, प्रकृति एवं रचना-संसार पर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि सृजक ने अपने और अपने आस-पास पसरे नरक से जो जूझा, भोगा और जिया, इससे उसके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। अपने सृजन के संदर्भ में प्रेरणा की संजीवनी भी इन्होंने यहीं से प्राप्त की। अपने जीवन के अनुभवों को उन्होंने मानवीय संघर्ष, करुणा, आस्था और जिजीविषा की कसौटी पर कसकर अपनी लेखनी का आधार बनाया। रोते-विलखते, हँसते, खिलखिलाते, कराहते, तड़पते, जीवन की कठिनाइयों से जूझते, जीवन पथ पर आगे बढ़ते संघर्षशील मनुष्य ही इनके कथा-साहित्य के नायक हैं। वे मानवतावादी दृष्टिकोण के पोषक हैं। वे अपने जीवन में ईमानदारी, जिंदादिली-दोस्ती, नारी के प्रति सद्भावना एवं देश के प्रति सम्मान को बहुत महत्व देते हैं। वे जिज्ञासु प्रवृत्ति के वैचारिक दृष्टिकोण से मार्क्सवादी कथाकार हैं। शोषण और शोषक इनके लेखन के निशाने रहे हैं।

संजीव का जन्म उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले के बांगरकला ग्राम में सन् 1947 में एक गरीब परिवार में हुआ था। परिवार में सदस्यों की संख्या बीस-पच्चीस थी और आश्रय के नाम पर डेढ़ बीघा उपजाऊ और चार बीघा ऊसर जमीन। दूर्गापुजा के समय मूर्ति गढ़ना भी इनका

---

43. संजीव, 'अल्लारखा, दरगाह और मूरतें', संजीव की कथा यात्रा दूसरा पड़ाव, संस्करण :2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 105

पुश्तैनी पेशा था। जातिगत विभेद, सामंती शोषण, आर्थिक विषमता और चरम दरिद्रता के कारण परिवार के कुछ सदस्य गाँव से पलायन कर कस्बानुमा शहर कुल्टी में रोजगार के लिए बसने को बाध्य हुए। अपने परिवार की आर्थिक विपन्नता और ग्राम छोड़ने की पीड़ा को उन्होंने **'पिशाच'** नामक कहानी में व्यक्त किया है। चार वर्ष की अवस्था में कुल्टी में ही रामेश्वर गुरु जी के पाठशाला में शिक्षा-दीक्षा आरंभ हुई। केंदुआ उच्च विद्यालय कुल्टी से 1960 में मैट्रिक तथा बी. बी. कॉलेज आसनसोल से विज्ञान शाखा से स्नातक किए और यहीं कुल्टी में आयरन एण्ड स्टील कंपनी में केमिस्ट के पद पर कार्यरत हो गए। संजीव का बाल-विवाह हुआ था। पति-पत्नी दोनों दो ध्रुव के प्राणी थे। एक के लिए पढ़ना-लिखना ही सब कुछ था तो दूसरे के लिए यह रचना-धर्मिता एक तरह से प्रेत बाधा थी। अतः विवाह जैसे संबंध के लिए संजीव दो जीवों के बीच में वैचारिक समरूपता को महत्वपूर्ण मानते हुए कहानी **'सीपियों का खुलना'** में इस तरह के अरेंज्ड मैरेज का विरोध करते हैं। संजीव की चार पुत्री और एक पुत्र सहित पाँच संताने हैं जिसमें बड़ी बेटी मंजू मंद बुद्धि है जिसके भरण-पोषण की आजीवन जिम्मेदारी है। इतने बड़े परिवार के भरण-पोषण के लिए उन्हें 'ट्यूशन' भी पढ़ाने पड़ते थे। ट्यूशन पढ़ाने की इसी पीड़ा को इन्होंने 'मरोड़' कहानी में व्यक्त किया है। संजीव साहित्यिक मोर्चे पर जितने सफल रहे हैं पारिवारिक मोर्चे में उतने ही विफल रहे हैं। पत्नी की नजर में वे एक अव्यवहारिक इंसान हैं। बेटा-बेटियों में से किसी ने भी कभी संजीव के मन की व्यथा को महसूस कर उनसे संवेदनशील हृदय से बात करने की जहमत नहीं उठाई। जबकि यह उनके अंदर की जिजीविषा ही थी जो संपूर्ण जीवन पारिवारिक आपूर्ति और साहित्यिक रचना के लिए संघर्षरत रहे।

संजीव ने जिस परिवेश में सांस लिया वह सामंती शोषण, जातिभेद, आर्थिक विषमता और धार्मिक कर्मकांड का अखाड़ा था। गाँव में ठाकुर और ब्राह्मण दलितों के साथ पशुवत व्यवहार करके उनसे घृणा करते थे। मजदूरी के नाम पर इन्हें अधिक चोकर मिली हुई बासी चिमड़ रोटी, घुन खाये हुए मकई के कुछ दानें, कोदों इत्यादि मिलते थे। दलितों की स्त्रियाँ सवर्णों की बेगारी करने के लिए बाध्य थीं। कुल्टी का परिवेश भी शोषक और शोषित के

मामले में ग्रामीण परिवेश से कुछ ज्यादा अलग नहीं था। पहले शोषक सामंत थे अब पूंजीपति। यहाँ तक कि उनके प्रति जातिगत घृणा में भी कोई विशेष तब्दीली नहीं आई थी। मजदूरों का शोषण चरम पर था और जो न्यूनतम मजदूरी कोइलरी में मजदूरों को मिलती थी, उसमें से अधिकांश तो सूदखोर और रंगदार छिन लेते थे।

किसी भी व्यक्ति की प्रकृति उसकी बोलचाल, रहन-सहन, चाल-चलन, आदतें, विचार, शारीरिक बनावट, जीवन मूल्य इत्यादि के इर्द-गिर्द घूमती है और इसी का छाप उसकी रचनाओं पर भी पड़ता है। संजीव के स्वभाव की एक विशेषता है कि वे किसी भी व्यक्ति की बात बहुत ही जिज्ञासु भाव से अत्यधिक महत्व देते हुए सुनते हैं। जैसा लेखक नरेन के साथ पहली मुलाकात में उनकी बातों से प्रभावित होकर उनके दबदबे में आ गए थे। उनका आचरण अत्यंत सौम्य और शालीन है, वे किसी कन्फ्रंटेशन में नहीं उलझते हैं। उन्होंने अपना ईमेज मैनेजमेंट करने की कोशिश कभी नहीं की। अपनी पारिवारिक स्थिति को वे कभी छिपाये नहीं। उनके मित्र उनके जीवन के संबल हैं क्योंकि उनका स्वभाव ही मित्रवत है। नकस्ली आंदोलन में शहीद हुए अपने बचपन के मित्र सूरज की विधवा को आर्थिक मदद करने से भी पीछे नहीं हटते हैं। वे स्वभाव से अत्यंत संकोची रहे हैं। इसी संकोच के कारण वे कोयलांचल के लोगों द्वारा दिये जाने वाले सम्मान लेने से भी हिचकिचाते रहे हैं। अपने कथा-साहित्य में उन्होंने स्त्री को काफी सम्मान दिया है, उन्हें अश्लीलता से सर्वथा दूर रखा है। वे एक ईमानदार प्रकृति के साहित्यकार हैं। दोहरे स्तर का जीवन उन्हें कदापि पसंद नहीं है। वे अकसर रात को ही लिखते हैं। परंतु साहित्य रचना की प्रक्रिया उनके दिमाग में चौबीसों घंटे चलती रहती है। सवर्ण और दलित समाज में बँटी हुई जातीय व्यवस्था के वे घोर विरोधी रहे हैं। वैचारिक दृष्टिकोण से वे मार्क्सवादी हैं और नक्सलवादी आंदोलन से प्रभावित भी, जिसके कारण उनकी वैचारिकता में तार्किकता और क्रांतिकारी आवेग दोनों ही देखा जा सकता है। अपने इस विकसित दृष्टिकोण का श्रेय वे अपने शिक्षकों, कुछ मित्रों, बड़े भाई और 'दिनमान' पत्रिका को देते हैं। वे साहित्य के स्तर और उद्देश्य के प्रति सचेत, यथार्थवादी और जनता के प्रति समर्पित लेखक हैं।

संजीव जमीन से जुड़े कथाकार हैं। उनका सारा रचनाकर्म सिर्फ और सिर्फ जनता को समर्पित है। उन्होंने अभी तक एक सौ पैंतीस से अधिक कहानियाँ, दस से अधिक उपन्यास, दो बाल उपन्यास और कुछ संपादकीय आलेख लिखे हैं। इनके पात्र परिस्थितियों से भागते नहीं हैं, अपितु लड़ते-भिड़ते और संघर्ष करते हैं। चाहे वह **'जसी-बहू'** की जसी-बहू हो, **'अपराध'** के सचिन और संघमित्रा, **'मरोड़'** के मास्टर दीनानाथ आदि ढेरों पात्र हैं। पर्दा प्रथा, जातिप्रथा और वर्ण की जकड़बंदी समाज में यथावत बनी हुई है। जिसका शिकार तेतरी जैसी निरक्षर, निश्छल महिलाएं होती हैं। 'मौसम' कहानी के अंतर्गत ग्राम समाज में पारंपरिक सामंती ढाँचा पूरी तरह चरमरा रहा है और एक नया अर्थवाद उभरकर सामने आ रहा है जिसे सामंती समाज इतनी आसानी से स्वीकार करने वाला नहीं है। इनके कथा-साहित्य में गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक शोषण, आर्थिक विषमता, शिक्षा, स्वास्थ्य, राष्ट्रधर्म, खाप-पंचायत, सांप्रदायिकता, श्रमिक-यूनियन, मैनेजमेंट की चालाकी आदि सभी मुद्दों पर चर्चा हुई है। बहुत सारे अनछुए संदर्भों जैसे –सर्कस, कोलफिल्ड आदि को उन्होंने छुआ है। अतः दलित, आदिवासी, किसान, मजदूर एवं शोषित-पीड़ित जनता के पक्ष में खड़ी होती है इनकी लेखनी। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लैस, प्रगतिशील विचारधरा के संरक्षक, प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले एक जनवादी कथाकार हैं।